आरंभिक ऐतिहासिक युगीन भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण : बुद्धकालीन सन्दर्भ

डॉ. ईश्वर दान, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,
इतिहास विभाग, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
इमेल: ishwar@satyawati.du.ac.com, मोब. 9818971955

सारांश

छठी सदी ई.पू. से प्रमुख गतिविधियों का केन्द्र पश्चिमोत्तर भारत और पंजाब की अपेक्षा गंगा का मैदान बन गया। 600 से 300 ईसा पूर्व का काल भारतीय इतिहास में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तनों का काल है जिनके बहुरूपी दुरगामी परिणाम निकले। नगरों का उदय, जनपदीय राज्यों की स्थापना और नये दार्शनिक – आध्यात्मिक विचारों का उदय के साथ एक नये ऐतिहासिक युग का प्रारम्भ हुआ। उत्तर वैदिक काल से मंद गति से चली आ रही आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं ने 700 ईसा पूर्व के आस-पास तीव्र गति पकड़ ली और कालांतर में सुदृढ़ व्यवस्थाओं का रूप धारण कर लिया। यह काल आर्थिक दृष्टि से उत्तर भारत की मध्य गंगा घाटी क्षेत्र में कृषि के अभूतपूर्व विस्तार, शिल्प तथा वाणिज्य के विकास तथा मुद्रा व्यवस्था के प्रारम्भ के कारण महत्वपूर्ण है। अधिक अधिशेष उत्पादन ने जहाँ एक ओर नगरीकरण के लिए अनुकूल स्थितियाँ तैयार की। वहीं दूसरी ओर क्षेत्रिय राज्यों के उदय का मार्ग प्रशस्त किया। पूर्ण विकसित कृषि आधारित और वर्ण विभाजित जटिल समाज का विकास हो चुका था, जिसने आर्थिक परिवर्तनों के साथ अनेक सामाजिक विषमताओं को जन्म दिया। यज्ञ प्रधान वैदिक धर्म तथा आडंबरों के विरोध में अनेक स्वर उठने लगे जिन्होंने पुरातन जीवन दर्शन ब्राह्मडों और वेदों की सर्वोच्चता को चुनौती देते हुए एक धार्मिक–बौद्धिक आन्दोलन का रूप ले लिया। मुद्रा अर्थव्यवस्था के आगमन से विनियम में सुविधा हुई और व्यापारिक गतिविधियों में एक गुणात्मक परिवर्तन आया।

बीज शब्द- *कृषि का प्रसार, अधिशेष उत्पादन, शिल्प तथा वाणिज्य, श्रेणी व्यवस्था, मुद्रा अर्थव्यवस्था*

प्रस्तावना :

ऐतिहासिक शब्दावली में ईसा पूर्व 600-300 का काल वैदिकोत्तर युग, बुद्ध का काल या प्राक्य मौर्य काल के रूप में जाना जाता है। इस काल को प्रारंभिक एतिहासिक या एतिहासिक काल भी कहा जाता है। पुरातत्व की दृष्टि से लगभग 600 ई.पू. से उत्तर भारत में ऐतिहासिक युग का प्रारम्भ होता है जब पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में अनेक स्थलों से उच्च कोटी की चमक वाले उत्तरी काले पालिशदार बर्तन (NBPW) के ठीकरे प्राप्त हुए हैं (शर्मा: 2007, 141)। उत्तरी काले पालिशदार बर्तन (लगभग 700-200 ई.पू.) धनाढ्य वर्ग द्वारा प्रयोग किये जाने वाले विलासोपकरण थे, जबकि दैनिक उपयोग में काले एवं लाल रंग के बर्तनों का प्रयोग प्रचलित था। उत्तर काले पालिशदार बर्तन इस काल की पहचान है जो बहुत से लोहे के औज़ारों, प्रारंभिक आहत मुद्राओं और अन्य विलास की वस्तुओं के साथ मिलते हैं जो शहरीकरण का आभास कराते हैं एवं आरंभिक शहरी जीवन के अग्रदूत हैं। 600-300 ई .पू.के काल के लिए पहली बार विभिन्न साहित्य स्रातों के तुलनात्मक अध्ययन की संभवनाएँ है।

ऐतिहासिक स्रोत :

साहित्यिक स्रोतों से सूचनाएँ बड़ी सावधानी से लीं जाती है क्योंकि पाठ ज्यादातर समकालीन नहीं है और मूलतः मौखिक परम्परा में थें। बौद्ध धर्मग्रन्थों में विशेषतः त्रिपिटक में से पूरा (सम्पूर्ण) विनयपिटक, सुत्तपिटक की प्रारम्भिक चार पुस्तके – दीघ, मज्झिम, सम्युत्त और अंगुत्तर निकाय और सुत्तनिपात की रचना 5वीं -3वीं सदी

ई.पू. के बीच हुई (Singh: 2008, 257)। खुद्दकनिकाय में जातक कथाओं बौद्ध धर्म के पूर्व जन्म की कहानियों का रचना काल दूसरी-तीसरी सदी ई.पू. का माना जाता है। इस काल के कुछ निश्चित साक्ष्य पाणिनि के व्याकरण - अष्टाध्यायी से मिलते हैं जिसका काल आम तौर पर पांचवी सदी ई.पू. माना जाता है । ब्राह्मण परम्परा के अन्तर्गत धर्मसूत्र और गृहसूत्र का रचनाकाल भी ई.पू. 500-200 के लगभग है। धर्मसूत्रों में गौतम, आपस्तम्ब और बौधायन सबसे प्राचीन विधि ग्रन्थ माने जाते हैं (Singh: 2008, 258)। इन विधि ग्रन्थों में वर्णव्यवस्था का सुनिश्चित रूप से वर्णन मिलता है जिसमें चारो वर्णो के धर्म अथवा कर्त्तव्य निर्धारित किए गए हैं। पुराणों में क्षत्रिय राजाओं की वंशावलियाँ दी गई हैं। हालांकि उनका रचना काल काफी बाद का है। जैन साहित्य में कल्पसूत्र, भगवती सूत्र आदि प्रधान आगमों को ई.पू. छठी सदी के आस-पास रखा जाता है (शर्मा : 2007, 141)।

कृषि का प्रसार :

छठी सदी ई.पू. से प्रमुख गतिविधियों का केन्द्र पश्चिमोत्तर भारत और पंजाब की अपेक्षा गंगा का मैदान बन गया। हालांकि गंगा के मैदान में पहले से नवपाषाण और ताम्रपाषाण बस्तियाँ थी। और स्थायी कृषि की नींव बहुत पहले से पड़ चुकी थी किन्तु कुछ लोग पश्चिमी क्षेत्र से देशान्तरण करके भी वहाँ बस गए। पूर्वी क्षेत्र में आर्यो की आबादी फैलने के साथ-साथ लोहे की जानकारी भी फैली। इस क्षेत्र में भारी वर्षा होने के कारण यहाँ के जंगल घने और बहुत फैले हुए हैं। जलोढ़ मिट्टी में उगने वाले पेड़ों के तने भी मोटे और जड़े फैली हुई है। मध्य गंगा मैदान में साल में औसतन 45-55 इंच वर्षा होती हैं। जबकि कुछ क्षेत्रों में औसतन वार्षिक वर्षा 70 इंच तक होने तथा कछारी मिट्टी के कारण यह अत्यन्त उर्वर क्षेत्र है (Chakravarti, 2016, 92)। पूर्वी उत्तर प्रदेश और का क्षेत्र धान की खेती के लिए अत्यन्त अनुकूल । इस काल में धान रोपने की शुरूआत एक महत्त्वपूर्ण विकास था जिसके रोपण तथा प्रतिरोपण का ज्ञान का उल्लेखपालि तथा संस्कृति के विभिन्न ग्रन्थों में है। साथ शालि (सली) नामक चावल तथा चावल के अन्य प्रकारों की खेती की जाने लगी जिनका उल्लेख रक्त सली, गन्ध, सली, आदि के रूप में मिलता है। साथ ही किसान जौ, दाले, तिल, ज्वार, बाजरा, ईख और कपास की व्यापक खेती भी होने लगी जिनके लिए बाहरी जो की आवश्यकता थी।

अब साल में दो फसलें बल्कि कही-कहीं तीन फसलें भी उगाई जाने लगी थी (थापर: 2008,183)। चावल की सिंचित खेती से कृषि अधिशेष में वृद्धि हुई क्योंकि उससे अन्य फसलों के मुकाबले पैदावार बहुत बढ़ गई। अधिशेष उत्पादन के साथ-साथ उसे एकत्र, नियंत्रित और वितरित करने वाला समाज का एक छोटा समूह का उदय भी हो रहा था।

पाणिनि का कथन है कि खेतों में दो या तीन बार हल चलाये जाते है और पैदावार के मुताबिक खेतों का वर्गीकरण किया जाता है। पाली ग्रन्थों में कृषि को सर्वोत्तम व्यवसायों में से एक माना गया है जिसमें अन्य पशुपालन और व्यापार है। पाणिनी में सदियों में बोई जाने वाली आश्वयुजक (रबी), गर्मियों में बोई जाने वाली ग्रेशमक (खरीफ) का उल्लेख मिलता है। बासंतक, बसंत ऋतु की फसल थी (Chakravarti, 2016, 93)।

व्यापक कृषि के लिए जंगलों को साफ करने की आवश्यकता रही होगी। शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट उल्लेख आया है कि यज्ञ अग्नि के माध्यम से जंगल जलाकर वैदिक लोग आगे बढ़े। यह वस्तुतः जंगल जलाकर तथा पेड़ों की कटाई करके भूमि को कृषि योग्य बनाने की प्रक्रिया थी। इस कठिन कार्य में लोहे के प्रयोग ने सुविधा प्रदान की।

वर्ण विभाजित जटिल समाज और अर्थतंत्र :

बौद्ध ग्रंथों में जन्म पर आधारित जाति प्रथा का घोर विरोध किया गया है। बुद्ध के अनुसार जन्म से नहीं वरन् कर्म से जाति का निर्धारण होता है। जिनमें पूर्ण ज्ञान तथा नैतिकता हो, वह देव तथा मनुष्य सबसे श्रेष्ठ होता है। हालांकि बौद्ध व जैन धर्म ने वर्ण-व्यवस्था को समाप्त करने का प्रयास नहीं पर उन्होंने संघ का द्वार सभी

वर्गों तथा जातियों के लिए खुला रखा। विनय पिटक में कृषि, पशुपालन (गोरखा) और व्यापार की गणना उच्च व्यवसायों में किया गया है। अंगुत्तर निकाय में व्यापार में सफलता के लिए उपाय बताये गये हैं (Brown: 2017, 65)। नवोदित धनाट्य व्यापारी और गृहपति वर्ग अपनी धन संपदा के अनुकूल सामाजिक प्रतिष्ठा की आकांक्षा रखता था। यह स्वाभाविक ही था कि वैश्य वर्ग बौद्ध धर्म की तरफ आकर्षित हुआ क्योंकि संघ में उन्हें विशेष आदर मिलता था। इसीलिए बौद्ध धर्म को अपनाने वाले प्रारंभिक उपासक व्यापारी वर्ग में से थे (Singh: 2012, 15)। आम लोगों के लिए, बुद्ध ने उद्योग, मितव्ययिता, उद्यमशीलता और संसाधनशीलता के माध्यम से धन और भौतिक समृद्धि प्राप्त करने की सलाह दी, लेकिन उन्होंने दूसरों के लिए चिंता और देखभाल, अहिंसा, उदारता और अंततः, धन के प्रति अनासक्ति जैसे मूल्यों की भी वकालत की, क्योंकि यह अस्थाई है और स्थायी खुशी प्रदान करने में असमर्थ है(Sizemore and Swearer: 1993, 1–28)।

वैदिकोत्तर काल में एक नये सामाजिक समूह का उदय हुआ जो अपने धन के बल पर गाँव में प्रभावशाली वर्ग बन गया था । किन्तु पाली ग्रन्थों में इससे ऐसे व्यक्ति का बोध होने लगा "जो किसी भी जाति के एक विशाल पितृसत्तात्मक परिवार का मुखिया हो और जिसे मुख्यतः अपने धन के कारण सम्मान मिला हो"(Jha: 2011, 38)। अब सम्पत्ति की ईकाई केवल पशु ही नहीं हर गया था। इस काल तक संपत्ति का संचय कृषि, उत्पादन अथवा व्यापार के रूप में हो सकता था। हालांकि पशुपालन या गौ रखना भी एक महत्वपूर्ण व्यवसाय था। शायद पशुओं का स्वामित्व भी व्यक्तिगत था किन्तु घास के मैदानी या जंगलों पर अब भी सामूहिक स्वामित्व था। जमीन का महत्व बहुत बढ़ गया था जो सम्पत्ति या सामाजिक मान का आधार थी। प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में अनेक धनाढ्य गृहपतियों का उल्लेख मिलता है । गृहपति मेण्डक राज्य की सेना को वेतन देता था और यह विवरण मिलता है कि उसने बुद्ध व संघ की सेना के लि 1250 गौ के झुंड की भेंट दी थी (Jha, 2018, 45)। गृहपति कभी कभी अच्छे दुकानदारों को कर्ज भी देते थे और अपनी सुरक्षा के लिए अंगरक्षक भी रखते थे। ब्राह्मण गाँवों में ब्राह्मण गृहपतियों का उल्लेख मिलता है। एकनल गाँव का ब्राह्मण काशी भारद्वाज 500 फाल का उपयोग अपनी जमीन पर करवाता था। गृहपतियों के बढ़ते हुए राजनीतिक महत्त्व का पता इस बात से चलता है कि उनकी गिनती एक चक्रवती राजा के सात कोष में की गयी है (Singh: 2009, 288)। ग्रामीण क्षेत्र में ऐसे धनाढ्य वर्ग के रूप में गृहपति के उद्भव से समाज में बढ़ती हुई विषमताओं का ज्ञान होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य मंगा के मैदानों में भूमि का काफी बड़ा भाग दो ऊपरी वर्णों के अधिकार में था जो करमुक्त थे । अलग-अलग लोगों की जोतों का आकार अलग-अलग था जिससे खेती के काम में लगे लोग वर्गों में बंट गये। छोटे किसानों को आमतौर पर कस्सक या कृषक कहा जाता था। बड़े भूस्वामी महपति एवं गृहपति कहलाते थे। इन्हीं पर्यत्नों के फलस्वरूप 500 या 1000 फरीसा के माघ के जमीन के टुकड़े विकसित हुए जिन पर दास या कर्मकार (वेतन मजदूर) खेती करते थे (शर्मा : 2007, 145)।

विभिन्न उद्योग व वाणिज्य-व्यापार :

कपड़ा एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक पदार्थ था क्योंकि प्राचीन पालि ग्रंथों के अनुसार बौद्ध युग में सूती कपड़ों का आमतौर पर प्रयोग होने लगा था (Sharma: 2005)। बनारस के आस-पास कपास की खेती का भी उल्लेख मिलता है जिससे कपड़ा बनता था। किंतु दूरवर्ती व्यापार मुख्यतः विलास की वस्तुओं का ही होता था। जैसे- मनके, हाथी दाँत की वस्तुएँ, काँच की वस्तुएँ आदि। आम उत्पाद स्थानीय बाजारों में खप जाते थे । घोड़ों के सौदागर तथा अन्य प्रकार के व्यापारी, दूरवर्ती तथा दुर्गम व्यापार- मार्गों पर बार-बार आते-जाते थे। यातायात के साधनों में सुधार से व्यापार के विकास में सहायता मिली। एक परवर्ती जातक से यह पता चलता है कि लगभग दो इंच चौड़ी लोहे की पट्टी चक्के के बाहरी किनारे के चारो और लगाई जाती थी, जिससे उसमें खूब

मजबूती आ सके (Sharma: 2011, 156)। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय तक स्वयं लौह उत्पाद भी व्यापार का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन चुका था। लौह की वस्तुओं में फावड़ों, हंसियों और चाकूओं से लेकर कीलें, तीरों के फल, बर्तन और आईने शामिल थे। नमक पश्चिमोत्तर में पोटवार पठार की खनों से निकाला जाता था जहाँ से शायद इसे लंबी दूरी तय कर गंगा के मैदान तक पहुँचाया जाता था। व्यापार व उद्योग सेटिव्यों के हाथ में था (थापर: 2008,182)। इस काल में नदी - मार्गों का उपयोग होने से नावों पर दूर-दूर तक माल की ढुलाई होने लगी। अनेक ज्ञातव्यों में समुद्री यात्राओं का भी उल्लेख मिलता है। अंगुत्तर निकाय के अनुसार समुद्री व्यापारी नोचालन में सहुलियत के लिए समुद्रतर की सूचना देने वाले पक्षियों का उपयोग किया करते थे (Singh: 2008, 258)। पाली ग्रंथों में तटवर्ती बंदरगाहों- जैसे गंगा डेल्टा में तामलुक और पश्चिमी भारत में भृगुकच्छ के अनके उल्लेख मिलते हैं (थापर: 2008, 205)। खुदाईयों में एक ही तरह की कुछ काँच की वस्तुओं और रत्नों-मणियों की प्राप्ति से इन प्रतिष्ठा की वस्तुओं के सुदर-व्यापार का ज्ञान होता है। शीशे जैसी चमक वाली उत्तरी काले पालिशदार मृद्भाण्डों की श्रेष्ठ किस्मों, जिनका मुख्य उत्पादन क्षेत्र बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश था, का थी व्यापार होता है। विलास की इन वस्तुओं का प्रयोग शहरों में रहने वाले समृद्ध वर्ग के लोग किया करते थे।

व्यापारिक मार्ग :

चाहे नगरों का उदय किसी भी कारणवश हुआ हो सभी नगर अंततः बाजार के रूप में विकसित हो गये। आंतरिक कारणों के अलावा सिकंदर के आक्रमण (327-326 ई.पू.) के फलस्वरूप अनेक व्यापार मार्ग खुल गये और पश्चिमोत्तर भारत तथा पश्चिम एशिया के बीच व्यापारिक संबंधों की संभावनाएं उजागर हो गयी। पूरे उत्तर भारत, दक्कन और सुदर दक्षिण में अलंगकुलम में उत्तरी काले पालिशदार बर्तनों और आहत मुद्राओं के वितरण से अंतरक्षेत्रिय संपर्क का ज्ञान होता है। उत्तरापथ और दक्षिणपथ दो प्रमुख व्यापारिक मार्ग थे जो गंगा नदी के समानांतर हुए नर्मदा के मुहाने पर भृगुकच्छ तक जाता था (Chandra: 1977, 73)। उत्तरापथ मार्ग कौशांबी से दोआब तक और आगे पंजाब को पाटकर तक्षशिला तक जाता था जो पश्चिम में विदेशी व्यापार का द्वार था। अष्टाध्यायी और विनयपिटक में उत्तरापथ का विवरण मिलता है। एक और दक्षिण व्यापार मार्ग पाटलीपुत्र को मृगुकच्छ या गोदावरी पर स्थित प्रतिष्ठान तथा पश्चिमी तट के अन्य बंदरगाहों से जोड़ता था (Singh: 2008, 258)। इन मुख्य मार्गों के अलावा उत्तरापथ के कुछ अन्य सहायक मार्ग भी थे जो राजस्थान, सिंध और उड़ीसा को मुख्य मार्ग से जोड़ते थे। बौद्ध जातकों में 500 से लेकर 1000 गाड़ियों के साथ एक जनपद से दूसरे तक जाने वाले काफिलों के कई वर्णन मिलते हैं। एक कथा में उल्लेख है कि अपनी यात्रा में बुद्ध की मुलाकात बेलधा नामक व्यापारी से हुई, जो चीनी से भरे घड़ों को 500 गाड़ियों पर लादकर अंधकोविन्द की आरे जा रहा था (Jha: 2018, 37)।

सिक्कों का प्रचलन और मुद्रा अर्थव्यवस्था :

मुद्रा अर्थव्यवस्था के आगमन से विनियम में सुविधा हुई और व्यापारिक गतिविधियों में एक गुणात्मक परिवर्तन आया। सिक्कों के प्रचलन से व्यापार में बहुत वृद्धि हुई और हिसाब-किताब रखना सुगम हो गया (Chakaraborti : 1966)। चांदी के आहत सिक्के व्यापक वैध मुद्रा हो गए हालांकि तांबे के आहत सिक्के और ढले हुए सिक्के भी चलते थे। पुरातात्विक खोज के दौरान हमें जो प्राचीनतम सिक्के मिले हैं, उनकी तिथि बौद्धकाल से पहले की नहीं हो सकती क्योंकि कुछ सिक्कों में मुद्रालेख नेगम अंकित है और 5वीं सदी ई. पू. के आस-पास ही व्यापारिक संघों ने अपनी-अपनी छाप लगाकर मुद्राओं का प्रयोग आरंभ किया था (Sharma: 2011, 148)। मानक मुद्रा पण या कर्षापण या काहपन था और व्यवहार में उससे छोटी या बड़ी इकाइयों का विकास हुआ होगा। एक कार्षापण/काहपन 32 रत्ती के वजन का था जो 57.6 ग्रेन के बराबर होता है (32x1.8 ग्रेन) । सम्पूर्ण उपनिवेश में लगभग 500 ऐसे आहत

मुद्राओं के ढेर प्राप्त हुए हैं जिससे इस काल की विस्तृत मुद्राव्यवस्था का ज्ञान होता है (Chakravarti: 2010, 99)। चाँदी के सिक्कों से चाँदी की उपलब्धता का भी ज्ञान होता है। जिसमें से कुछ राजस्थान की खानों से निकाली जाती थी। सिक्कों की ढलाई एक शहरी पेशा रहा होगा। इस काल में मुद्रा-अर्थव्यवस्था इतनी महत्त्वपूर्ण हो गयी कि एक जातक में एक मरे हुए चुहे तक की कीमत मुद्रा में बताई गई है।

पाली ग्रंथों में बार-बार शहरों में रहने वाले से दिव्यों का वर्णन मिलता है जिनके पास अस्सी कोटी (करोड़) की धनसम्पत्ति थी। विनयपिटक के अनुसार अनाथ पिण्डक नामक गृहपति ने बुद्ध को दान में देने के लिए श्रावस्ती स्थित जेतवन के मूल्य के रूप में पूरे जेतवन को सिक्कों से ढक दिया था। हालांकि यह प्रसंग अतिश्योक्तिपूर्ण लगता है किन्तु इससे मुद्रा के व्यापक प्रचलन और इस उल्लेख से नकद में भूमि की खरीद-बिक्री का पता चलता है। साकेत के एक गृहपति ने चिकित्सक जीवक को 16,000 मुद्राएं तथा एक दास और दासी अर्पित की थी। बनारस के दूसरे गृहपति ने अपने पुत्र की चिकित्सा के लिए जीवक को 16,000 मुद्राएँ दी थी। सूद पर पर पैसे देने की प्रथा भी प्रचलित थी। कर्ज अदा किए बिना किसी को बौद्ध संघ में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी। सिक्कों के कारण नकदी कर वसूला जा सकता था और राज्याधिकारियों को नकदी बेतन देकर उन्हें अधीन रखा जा सकता था। सिक्कों के आने से रक्त संबंधियों पर निर्भरता में कमी आयी और राजा पैसे देकर योग्य व्यक्तियों को विभिन्न सेवाओं के लिए नियुक्त कर सकता था।

विविध व्यवसाय और शिल्प-संघ :

पूर्ववर्ती काल में आरंभ होने वाली विभिन्न कला और शिल्प इस काल में मुद्रा अर्थव्यवस्था से पूरी तरह जुड़ गयी। कई शहरों का महत्व कला और शिल्प के कारण था। राजगृह के संदर्भ में परवर्ती ग्रंथों में अठारह-शिल्प-संघों का उल्लेख किया गया है जिनमें से सिर्फ चार- बढ़ई, लोहार, चर्मकार धर्मकार और रंगदार के नामों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। बौद्ध रचनाओं में परम्परागत अठारह शिल्प-संघों का उल्लेख मिलता है। प्राचीन बौद्ध ग्रंथों में विभिन्न कारीगरी का भी वर्णन मिलता है जैसे - धोबी, रंगरेज, चित्रकार, नाई, दर्जी, बुनकर, रसोईया आदि जो शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों में सेवाएँ प्रदान करते थे। इसके अलावे वाले (कर्मकार), वाहन बनाने वाले (यानकार), स्वर्णभूषण बनाने वाले (सर्वणकार) लकड़ी और हाथी का दाँत का काम करने वाले (दंतकार), फूल मालाएँ बनाने वाले (मालाकार) संरकड़े की चीजे बनाने वाले (नलकार), रेशमी वस्त्र-निर्माता (कोसिर्यकार) और सूई बनाने वाले (सूचीकार) कारीगरों का भी उल्लेख मिलता है जो शहरों से या उनके आस-पास रह कर उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। पाणिनी संकेत देते हैं कि राजा तथा अधिक शाही लोग अपनी व्यक्तिगत सुविधाओं की देखभाल करने के लिए कम से कम एक दर्जन किस्म के सहायक रखा करते थे (Sharma: 2011, 148)।

निष्कर्ष :

साहित्यिक एवं पुरातात्विक प्रमाणों से 600-300 ई.पू. के काल में ग्रामीण बस्तियों के क्षेत्रफल और संख्या में विस्तार और उत्तर भारत में प्रचलित विभिन्न प्रकार के शिल्प उद्योगों के अस्तित्व का का बोध होता है जो कि जनसंख्या में वृधि की तरफ संकेत करता है। वैदिकोत्तर काल तक शिल्प-वस्तुओं के उत्पादन के होने में विशिष्टीकरण कर चुका था, और कारीगर और दस्तकार अकसर शिल्प-संधों या श्रेणियों में संगठित रहते थे। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता थी नगरीय अर्थतंत्र का पुनः विकास। विस्तृत कृषि और कारगर उपकरणों के समुचित प्रयोग के फलस्वरूप अधिक अनाज के उत्पादन में सहायता मिली जिससे नगरों के उदय के लिए पृष्ठभूमि तैयार हो गई। अधिशेष अनाज के द्वारा नगरों में रहने वाले शासकों, पुरोहितों, शिल्पियों, कारीगरों, सिपाहियों इत्यादि की भोजन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती थी। परंतु यह ध्यान रखने योग्य है कि अधिशेष के उत्पादन के साथ-साथ अधिशेष का संग्रह

और पुनर्वितरण भी इस परिवर्तन का एक अवश्यक घटक था।

सन्दर्भ ग्रन्थ:

1. Brown, C. (2017). *Buddhist economics: An enlightened approach to the dismal science*. New York: Bloomsbury, p. 65.
2. Chakravarti, R. (2016). *Exploring early India up to 1300 CE*. Delhi: Primus Books, p. 92.
3. Chakraborti, H. (1966). *Trade and commerce in ancient India (c. 200 B.C. to c. 650 A.D.)* (1st ed.). Calcutta: Academic Publishers.
4. Chandra, M. (1977). *Trade and trade routes in ancient India*. New Delhi: Abhinav Publications.
5. Jha, D. N. (2018). *The ancient Indian economy: Market, state, and society*. Cambridge: Cambridge University Press.
6. Jha, D. N. (2020). *Ancient India in historical outline* (4th ed.). New Delhi: Manohar Publishers.
7. Lal, M. (1984). *Settlement history and rise of civilization in Ganga–Yamuna Doab (c. 1500 B.C.–300 A.D.)*. Delhi, pp. 66–80.
8. Daniels, P. (2005). Economic systems and the Buddhist worldview: The 21st-century nexus. *The Journal of Socio-Economics, 34*(2), 245–268.
9. Sharma, R. S. (2005). *India's ancient past*. New Delhi: Oxford University Press India.
10. Singh, U. (2008). *A history of ancient and early medieval India: From the stone age to the 12th century*. New Delhi: Pearson Education India, p. 258.
11. Singh, U. (2012). *Vaishyas in ancient India: An ecological perspective*. New Delhi: Aakar Books.
12. Shrimali, K. M. (2016). *The age of iron and the religious revolution* (6th ed.). New Delhi: Tulika Books, p. 28.
13. Sizemore, R., & Swearer, D. (1993). Introduction. In R. Sizemore & D. Swearer (Eds.), *Ethics, wealth, and salvation: A study in Buddhist social ethics* (pp. 1–28). Columbia: University of South Carolina Press.
14. Thapar, R. (2002). *Early India: From the origins to A.D. 1300*. Berkeley, CA: University of California Press, p. 187.
15. थापर, र. (2008). *पूर्वकालीन भारत*. दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, पृ. 183.
16. शर्मा, रा. श. (2007). *प्रारंभिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास*. दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, पृ. 141.
17. शर्मा, आर. एस. (2011). *भारतीय इतिहास – एक पुनर्विचार*. दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, पृ. 156.

***